Mind and Society ISSN 2277-6907
Vol 09, No. III&IV,Sep. & Dec.2020, Page No. 47 to 52

बस्तर का नलवंश एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन

*डिश्वर नाथ खुटे

Received	Reviewed	Accepted
19 Oct. 2020	24 Oct. 2020	30 Oct. 2020

सभ्यता का विकास पाषाण काल से प्रारंभ होता है। इस काल में बस्तर मे रहने वाले मानव भी पत्थर के नुकीले औजार बनाकर नदी नाले और गुफाओं में रहते थे। इसका प्रमाण इन्द्रावती और नारंगी नदी के किनारे उपलब्ध उपकरणों से होता है। वैदिक युग में बस्तर दक्षिणापथ में शामिल था। रामायण काल में दण्डकारण्य को उल्लेख मिलता है। मौर्य वंश के महान शासक अशोक ने कलिंग (उड़ीसा) पर आक्रमण किया था, इस युद्ध में दण्डकारण्य के सैनिकों ने कलिंग का साथ दिया था। कलिंग विजय के बाद भी दण्डकारण्य का राज्य अशोक प्राप्त नहीं कर सका। वाकाटक शासक रूद्रसेन प्रथम के समय दण्डकारण्य में समुद्रगुप्त ने आक्रमण किया। उसने दक्षिणापथ के 12 राजाओं को परास्त किया था। समुद्रगुप्त ने 350 ई. में दक्षिण कोसल के राजा महेन्द्र (जो वाकाटक का करद सामंत था) तथा महाकांतार के राजा व्याघ्रराज को पराजित किया था। बस्तर में नलवंश का साम्राज्य 290 ई0 से 950 ई0 तक माना जाता है ।

शब्द कुंजीः— तालुका, अबूझमाड़, बैलाडीला, दण्डकारण्य, महावन, कोश, चक्रकोट , भ्रमरकोट, एर्राकोट, ।

बस्तर का सामान्य परिचय :

अंग्रेजी साम्राज्य के अंतर्गत एक सामंतीय राज्य के रूप में बस्तर 17048′ से 20014′ उत्तरी अक्षांश और 80015′ से 8201′ पूर्वी देशांश के मध्य स्थित था। बस्तर का क्षेत्रफल 13062 वर्गमील था, जो कि देश की चौथी बड़ी क्षेत्रफल वाली रियासत थी। उत्तर से दक्षिण तक लंबाई 183 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक अधिकतम चौड़ाई 205 कि.मी. थी।[1] बस्तर रियासत के उत्तर में कांकेर रियासत एवं रायपुर जिला, पूर्व में जैपुर (उड़ीसा), दक्षिण में भद्राचलम तालुका और पश्चिम में चांदा जिला तथा हैदराबाद का निजाम राज्य विद्यमान था।[2]

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1 जनवरी 1948 ई. को बस्तर व कांकेर रियासत को मिलाकर बस्तर जिला का निर्माण किया गया तथा मध्यप्रांत में मिलाया गया। 20 मार्च 1981 को बस्तर को संभाग का दर्जा प्रदान किया गया। वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य के अंतर्गत बस्तर संभाग प्रशासनिक दृष्टि से 7 जिले 32 तहसीलों और 32 विकासखंडों में विभाजित है।[3]

भौगोलिक परिचय :

बस्तर रियायत की भू—पृष्ठ अनेक प्रकार की शैलों से निर्मित है। ये शैल अत्यंत प्राचीन है। भारतीय भू—वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग के अनुसार बस्तर के शैलों को निम्नांकित 5 समूहों में बांटा गया है 1. विन्ध्यन शैल समूह 2. कड़प्पा शैल समूह 3. प्राचीन ट्रेप 4. आर्कियन ग्रेनाइट और नाइस 5. धारवाड़ क्रम।[4]

भूगर्भिक बनावट के फलस्वरूप बस्तर में पृथ्वी के प्राचीन शैल से लेकर आधुनिकतम नवीन चट्टाने पायी जाती है। बस्तर में मुख्यतः ग्रेनाइट, नाइस, शिस्ट एवं अन्य बलुआ पत्थर, चूना पत्थर, चट्टाने पायी जाती है। ये सभी चट्टाने ठोस तथा कठोर होती है। इनमें भूमिगत

**सहायक प्राध्यापक इतिहास अध्ययनशाला पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग.*

जल को इकटठा करने के गुणों की कमी रहती है तथा जल रिसने की क्रिया का अभाव रहता है। अतः पठार में भूमिगत जल संचयन एवं दोहन की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है।[5]

धरातलीय स्वरूप :

बस्तर का धरातलीय स्वरूप सभी जगह एक समान नहीं है, कहीं पर अधिक ऊँचा तो कहीं पर नीचा है। बस्तर की भूमि समुद्र सतह से 160 से 180 मीटर तक ऊँची है।[6] प्राकृतिक दृष्टि से बस्तर को 6 भागों में बांटा जा सकता है –(1) उत्तर का निम्न या मैदानी भाग (2) केशकाल की घाटी (3) अबूझमाड़ की पहाड़ी क्षेत्र (4) उत्तरपूर्वी पठार (5) दक्षिण का पहाड़ी बैलाडीला क्षेत्र (6) दक्षिण निम्न भूमि।[7]

बस्तर का धरातलीय स्वरूप एवं भूगर्भिक संरचना जल के वितरण को प्रभावित करता है। इसका अधिकांश क्षेत्र उबड़–खाबड़ होने के कारण इन भागों में जल संग्रहण की क्षमता कहीं अधिक तो, कहीं कम है। वहीं दक्षिणी भाग अपेक्षाकृत मैदानी या कम उबड़–खाबड़ है, जिससे स्थाई और बड़ा सरिताओं का विकास हुआ है। बस्तर संभाग की प्रमुख नदियां –इन्द्रावती, शबरी, डंकनी–शंखनी, नारंगी, कोटरी दूध, कांगेर आदि है।

बस्तर का ऐतिहासिक परिचय :

सभ्यता का विकास पाषाण काल से प्रारंभ होता है। इस काल में बस्तर मे रहने वाला मानव भी पत्थर के नुकीले औजार बनाकर नदी नाले और गुफाओं में रहते थे। इसका प्रमाण इन्द्रावती और नारंगी नदी के किनारे उपलब्ध उपकरणों से होता है।[8] इन्द्रावती नदी के किनारे स्थित खड़कघाट, कालीपुर, माटेवाड़ा, देऊरगांव, गढ़चंदेला, बिन्ता, घाटलोहंगा तथा नारंगी नदी के तट स्थित गढ़बोदरा राजपुर और संगम के आगे चित्रकोट में पाषाणयुगीन उपकरण प्राप्त हुए हैं। बस्तर के आलोर ग्राम के निकट की पहाड़ी पर शैलाश्रय और शैलचित्र बने हुए मिले हैं। यह चित्र लाल रंग के है और मृदा वर्णों से चित्रित है। वैदिक युग में बस्तर दक्षिणापथ में शामिल था। यहां के घने जंगलों में निवास करने वाली अनार्य जातियों का उल्लेख तत्कालीन ब्राम्हण ग्रंथों में मिलता है।[9]

रामायण काल में दण्डकारण्य को उल्लेख मिलता है। वामन पुराण के अनुसार – दण्डकारण्य का समस्त क्षेत्र वनों से आच्छादित होने के कारण इसे शालवन नाम से जाना जाता था। वायु पुराण के अनुसार– दण्डकारण्य को वत्सर जनपद के नाम से जाना गया जो बाद में बस्तर बन गया। दण्डकारण्य में कई जनपद सम्मिलित थे। इनमें शबर माल, मूरल तथा वत्सर की चर्चा पुराणों में की गई है।[10]

बुद्ध के समय में अस्सक गोदावरी तट का क्षेत्र था। मौर्य वंश के महान शासक अशोक ने कलिंग (उड़ीसा) पर आक्रमण किया था, इस युद्ध में दण्डकारण्य (आटविक) के सैनिकों ने कलिंग का साथ दिया था। कलिंग विजय के बाद भी दण्डकारण्य का राज्य अशोक प्राप्त नहीं कर सका। उसने अपना द्वितीय प्रस्तर अभिलेख में उत्तीर्ण करवाया था कि आटविक जन अविजित पड़ोसी है –''अन्तानं अविजितानं।''[11] कलिंग के महामेघ वंश राज्य की स्थापना खारवेल (182 ईसा पूर्व) ने की तथा दण्डकारण्य में जैन धर्म का प्रचार प्रसार हुआ। बस्तर व कोरापुट क्षेत्र में अनेक जैन मूर्तियां मिली है।[12]

ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दी में दण्डकारण्य पर स्थानीय नागवंश ने अपना अधिकार जमाया। नागार्जुन कोण्ड अभिलेख में इस क्षेत्र को महावन कहा गया है।[13] 202 ई0 से 350 ई. की अवधि दण्डकारण्य के इतिहास में अंधकार पूर्ण रही।[14] वाकाटक शासन रूद्रसेन ८ के समय दण्डकारण्य में समुद्रगुप्त ने आक्रमण किया। उसने दक्षिणापथ के 12 राजाओं को परास्त किया था। समुद्रगुप्त ने 350 ई. में दक्षिण कोसल के राजा महेन्द्र (जो वाकाटक का करद सामंत था) तथा महाकांतार के राजा व्याघ्रराज को पराजित किया था।[15] इसके बाद इस क्षेत्र में गुप्त वाकाटक संस्कृति का प्रभाव बना रहा।[16]

बस्तर का नलवंश (250 ई. से 950 ई.)

बस्तर के नलवंश के राजाओं का ज्ञान हमें शतपथ ब्राम्हण, रामायण, महाभारत तथा उनके 5 अभिलेखों और सक्कों से प्राप्त होता है। बस्तर संभाग के कोण्डागांव जिले के अंतर्गत अडेंगा ग्राम से कुल 32 सोने के सिक्कें 1939 ई. में मिले है, जो कि नागपुर संग्रहालय में सुरक्षित है।[17] बस्तर में नलवंश का साम्राज्य 290 ई0 से 950 ई0 तक माना जाता है।

सिसुक (290 ई. से 330 ई.) –

नलवंश में मूलपुरूष पौराणिक नाम नल को माना जाता है, किन्तु पौराणिक नैषध अथवा महाकान्तार क्षेत्र छत्तीसगढ़ (दक्षिण कौसल) में पुराणों के अनुसार तीसरी शती ई. अंत से चौथी शती ई. के प्रारंभ में पुरिका के शासक का नाम सिसुक मिलता है जो वाकाटक वंश के संस्थापक विंध्यशक्ति

के पुत्र प्रवरसेन प्रथम का समकालीन था। नलवंशीय सिसुक की राजधानी पुरिका को पुष्करी भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के दक्षिणपूर्वी भाग में यह स्थित था।[18]

व्याघ्रराज (330 ई. से 370 ई.) –

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से विदित होता है कि उसने दक्षिणापथ के राजाओं पर विजय प्राप्त की थी तथा उन्हें मुक्त कर दिया था। उस समय महाकान्तार के व्याघ्रराज ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी।[19]

वृषध्वज (370 ई.–400 ई.) –

वृषध्वज को नलवंशीय व्याघ्रराज का उत्तराधिकारी माना गया है । इनकी एक मुहर भींटा से प्राप्त हुई है जो चौथी ई. शताब्दी में मध्य–क्षेत्र में हुए थे।[20]

वराहराज (400 ई.–440 ई.) –

वराहराज ने 400 ई. से 440 ई. तक शासन किया । इनका शासनकाल समृद्धशाली था। इनके 29 सोने के सिक्के एड़ेंगा से प्राप्त हुए है। इनकी मुद्राओं पर नन्दी का चित्र अंकित है जिससे अनुमान होता है कि वह शैव धर्म को मानता था। उसने केशकाल के समीप गोबरहीन गांव में लगभग 22 शिव एवं विष्णु मंदिरों का निर्माण करवाया था। वराहराज की सम्पन्नता को देखकर वाकाटक नरेश नरेन्द्र सेन ने उसके साम्राज्य पर आक्रमण कर कुछ भागों पर अपना अधिकार स्थापित किया था।[21]

भवदत्त वर्मन (440 ई.–460 ई.) –

वराह राज के बाद भवदत्त वर्मन नलवंश का शासक बना। वह इस वंश का शक्तिशाली और प्रतापी शासक था। उसने वाकाटक नरेश नरेन्द्र सेन को पराजित कर अपने पिता के पराजय का बदला लिया और उसकी राजधानी नन्दिवर्धन पर भी अधिकार कर लिया था।[22] भवदत्त वर्मन महेश्वर और कार्तिकेय का परम भक्त था। वह अशोक की तरह प्रजा पालक था।[23] उसका शासन काल आर्थिक समृद्धि का काल था जिससे स्वर्णकाल कहा जाता है।[24] उसका साम्राज्य पूर्व में कोरापुट से लेकर पश्चिम में बरार तक था। उसने अपनी पत्नी अचली भट्टारिका के साथ प्रयाग यात्रा के समय ग्राम दान किया था। अड़ेंगा जिला कोंडागांव से उसका चलाया हुआ एक स्वर्ण का सिक्का प्राप्त हुआ है। उसकी मृत्यु संभवतः 460 ई. में हुई।[25] भवदत्त ने महाराजा की उपाधि धारण की थी इससे पता लगता है कि वह किसी का करद राजा नहीं था। स्वयं शक्ति संपन्न था।[26]

अर्थपति भट्टारक (460 ई.–475 ई.) –

भवदत्त वर्मन की मृत्यु के बाद अर्थपति शासक बना। उसे अपने पिता का विस्तृत साम्राज्य प्राप्त था। वाकाटकों पर विजय अभियान में वह अपने पिता के साथ था लेकिन भवदत्त की मृत्यु के बाद नल कुछ समय तक कमजोर हो गए थे। नरेन्द्र सेन के पौत्र पृथ्वी सेन द्वितीय ने नलों पर आक्रमण कर अर्थपति को विदर्भ से भगा दिया और राजधानी पुष्करी को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था। अर्थपति दानी शासक था। उसके केसरिबेड़ा ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने कौरस गौत्रीय ब्राह्मण दुर्गार्य, रविरार्य तथा रविदत्तार्य को केसेलक ग्राम दान में दिया था। उसने सोने के सिक्के चलाए थे। अडेंगा (जिला कोंडागांव) में उसके दो सिक्के मिले है जिनपर ''श्री अर्थपति राजस्य'' लिखा है।[27] वाकाटकों से लड़ाई में अर्थपति स्वयं वीरतापूर्वक लड़ते हुए 475 ई. में मारा गया।[28]

स्कन्दवर्मन (475 ई.–495 ई.) –

अर्थपति की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई स्कन्दवर्मन राजगद्दी पर बैठा और नलों की शक्ति को पुनः बढ़ाया। उसने नष्ट–भ्रष्ट पुष्करी को फिर से बसाया और गौरव प्रदान किया। अपने राज्य को सुव्यवस्थित कर उसने वाकाटक शासकों पृथ्वीसेन द्वितीय व देवसन को परास्त किया। वाकाटको की कमजोरी का लाभ उठाकर विदर्भ के बहुत सारे भाग पर स्कन्दवर्मन ने अधिकार स्थापित कर लिया। स्कन्दवर्मन वाकाटकों के लिए गंभीर खतरा बन गया।[29] वह विष्णु भगवान का पूजक था। उसने गौवराहिन नामक गांव (उड़ीसा) में विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया था। ब्राह्मण, साधु तथा अनाथों के भरण–पोषण हेतु उसने ईश्वर के नाम से एक गांव का भी दान किया था।[30]

स्कन्दवर्मा की मृत्यु के बाद उसका पुत्र व पौत्र नलवंश के शासक बने। उन शासकों का नाम क्या था, यह अब तक अज्ञात है। वाकाटक नरेश पृथ्वी सेन के पुत्र हरिषेण ने नलों की राजधानी पुष्करी पर पुनः आक्रमण कर नल शासक को हराया था। इसके बाद नलों को अपना राज्य छोड़ना पड़ा। लगभग 150 वर्षों तक त्रिकलिंग क्षेत्र पर पूर्वी गंगों का अधिकार बना रहा।

567 ई. से 597 ई. के मध्य चालुक्य राजा कीर्तिवर्मन प्रथम ने नलों पर आक्रमण किया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस समय बस्तर और कोरापुट क्षेत्र पर नलों का अधिकार था। नल साम्राज्य पर चालुक्यों का शासन

788 ई. तक रहा। कालांतर में नलवंश के राजा दक्षिण कोसल में चले गए, इसकी पुष्टि राजिम (रायपुर) से प्राप्त 7वीं शताब्दी के अभिलेख से होती है। नलों ने चालुक्य सामंत की कमजोरी का लाभ उठाकर दक्षिण कोसल पर अधिकार कर लिया।[31]

पृथ्वीराज (634 ई.–675 ई.) –

634 ई. में पृथ्वीराज ने दक्षिण कोसल पर अधिकार कर लिया। उसे परवर्ती नल के नाम से जाना जाता है। वह नलराजा विलासतुंग का प्रपिता था। वह शक्ति सम्पन्न राजा था। उसने नलों की खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया।[32] वह चिकित्सा शास्त्र का भी अच्छा जानकार था।[33]

विरूपराज (675 ई.–700 ई.) –

पृथ्वीराज के बाद उसके पुत्र विरूपराज ने सत्ता प्राप्त किया। वह अपने को राजाधिराज कहता था तथा हिमवान की तरह विख्यात था जिसकी स्तुति दिशारूपी बन्दीगण किया करते थे। वह रूप में अप्रतिम तथा सत्यप्रिय था। वह त्यागी भी था तथा शौर्य का अधिकरण भी था।[34]

विलासतुंग (700 ई.–740 ई.) –

विरूपराज की मृत्यु के बाद विलासतुंग नलवंश का शासक बना। वह एक साहसी और प्रतापी राजा था। उसने महानदी व तेलनदी के तटवर्ती क्षेत्र पर अधिकार कर लंबे समय तक शासन किया। पाण्डुवंशी तीवरदेव ने 702 ई. के लगभग इस पर आक्रमण किया था, बाद में दोनो में मित्रता हो गई थी। वह पांडुवंशी शासक महाशिवगुप्त बालार्जुन का समकालीन था। विलासतुंग ने अपने एक स्वर्गीय पुत्र की स्मृति में राजिम में एक प्रस्तर अभिलेख लिखवाया[35] और राजीवलोचन मंदिर का निर्माण करवाया।[36] विलासतुंग वैष्णवधर्म का अनुयायी था।[37]

पृथ्वी व्याघ्र (740 ई.–765 ई.) –

विलासतुंग के पश्चात् पृथ्वीव्याघ्र नलवंश का राजा बना। उसने अश्वमेघ यज्ञ किया था तथा चालुक्य राजा विष्णुवर्धन तृतीय के नेल्लोर क्षेत्र के तटीय भाग पर अधिकार किया था। बाद में नन्दिवर्धन के सेनापति उदयचन्द्र ने इन्हें पराजित कर विष्णुवर्धन तृतीय के क्षेत्र से भगा दिया था। इसके बाद अपना पूरा ध्यान अपने साम्राज्य पर केन्द्रित किया।[38]

भीमसेन (लगभग 900 ई.–925 ई.) –

पृथ्वी व्याघ्र के पश्चात् नलवंश का शासक कौन हुआ, उस पर इतिहासविद् मौन है। पृथ्वी व्याघ्र के शासन के लगभग 150 वर्षो बाद नलवंशी राजा भीमसेन की जानकारी मिलती है। भीमसेन के पाण्डिय पथर ताम्रपत्र में नलवंशोद्भव तथा कुलकमलाङ्कार की जानकारी मिलती है। उसे महाराजधिराज परमेश्वर भी कहा गया है।[39] उसने भट्टपार्जुन नामक ब्राह्मण को कूर्मतलग्राम का दान माता–पिता तथा अपनी पुण्य वृद्धि हेतु दिया था।[40] इनके साम्राज्य के अंतर्गत बस्तर, कोरापुट तथा गंजाम के क्षेत्र आते थे।[41]

नलवंश का पतनः–

नल राजा भीमसेन के पश्चात् नलों का पतन प्रारंभ हो गया था। वातापी के चालुक्य शासक कीर्तिवर्मन प्रथम ने नलों को पराजित कर दिया। उधर दक्षिण कौसल में पाण्डुवंशियों के उदय के कारण नलों की सत्ता महाकान्तार तक सीमित हो गयी। 10वीं सदी के प्रारंभ में कल्चुरियों के आक्रमणों से पराजित होने के कारण नल शासक सत्ताविहीन हो गए। कुछ वर्षो बाद बस्तर कोरापुट अंचल में छिंदक–नागवंशीय शासको का अभ्युदय हुआ जो नलों के उत्तराधिकारी कहे जा सकते है।[42]

प्यारेलाल गुप्त ने लिखा है कि–नलवंश और नागवंश के बीच का काल ऐसा प्रतीत होता है कि केवल लड़ाई में गुजर गया, चढ़ाइयां होती रही और निर्माण की अपेक्षा विनाश ही अधिक हुआ।[43]

रामकुमार बेहार ने लिखा है कि–प्राचीन बस्तर में शासन कर रहे नलवंशी शासक समय के साथ कमजोर होते गए, चाहे विजेता हो, चाहे प्रजेता, युद्ध के नुकसान दोनों पक्षों को होता ही है। नलवंशी शासक जब शक्तिशाली थे तब तक वे आक्रमण करते थे, जब वे निर्बल हुए तब उन पर आक्रमण होने लगे। इन आक्रमणों से नलों की शक्ति और क्षीण होती गई।[44] रोहणी कुमार झा के अनुसार– नलों का शासनकाल बस्तर का स्वर्णयुग माना जाता है।[45]

निष्कर्षः

बस्तर में नलवंश का शासन बस्तर के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। दण्डकारण्य (बस्तर) के नल राजवंशों ने अपने को पुराण कालीन नलवंश से संबंधित मानते है। प्राप्त शिलालेखों, स्वर्ण मुद्राओं तथा ताम्रपत्रों से कुछ तथ्य प्रकाश में आये हैं। दण्डकारण्य अंचल और छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में नलवंशी शासकों के सिक्के व शिलालेख मिले हैं। अतः इतना निष्कर्ष तो सहज ही लगाया जा सकता है कि नलों की प्रसिद्धि इसी अंचल से प्राप्त हुई। इतिहासकारों का मत है कि नलों का साम्राज्य बस्तर, कोण्डागांव, कांकेर, दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर, बालाघाट, पूर्वी भण्डारा, और चांदा जिला तक फैला हुआ था। नल

वाकाटकों की राजधानी नंदिवर्धन सहित काफी बड़ा भाग जीत लिया था। नल शासक महान योद्धा थे तथा महाकान्तार क्षेत्र को एक स्थिर शासन प्रदान किया। उनके राज्य की समृद्धि स्वर्ण मुद्राओं के जारी होने से भी प्रतीत होता है। नल राजा शिक्षा और साहित्य के संरक्षक थे। चुल्ल, जान्तुरदास, दुर्गगोल, अर्कदेव, सुबन्धु जैसे महान लेखक व कवि इनके समय प्रसिद्ध विद्वान थे। नल राजा शैव और बैष्णव धर्म के पोषक थे। रोहणी कुमार झा ने नलों के शासनकाल को बस्तर का स्वर्ण युग माना है।

संदर्भ :

1. डी.ब्रेट.ई.ए., द सेंट्रल प्राव्हिंसेस गजेटियर, द छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स, 1909, पृ. 25.
2. ग्राण्ट, चार्ल्स, द गजेटियर ऑफ द सेंट्रल प्राविन्सेस एंड बरार, 1870, पृ. 29.
3. चंद्राकर,प्रीतिलता, बस्तर पठार में जल संसाधन–मूल्यांकन एवं विकास–एक भौगोलिक विश्लेषण, वैभव प्रकाशन रायपुर, 2007, पृ. 19.
4. बेहार, रामकुमार (संपा.) बस्तर एक अध्ययन, म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1995, पृ. 53.
5. चंद्राकर, प्रीतिलता, पूर्वोक्त, पृ. 26.
6. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, दिव्या प्रकाशन कांकेर, 1998, पृ. 6.
7. बेहार, रामकुमार (संपादक), बस्तर एक अध्ययन, पूर्वोक्त, पृ. 54.
8. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला, बस्तर आरण्यक, प्रकाशक निर्मला बेहार धरमपुरा जगदलपुर, 1985,पृ. 1.
9. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त पृ. 12.
10. पूर्वोक्त, पृ. वहीं.
11. शुक्ल, हीरालाल, प्राचीन बस्तर, विश्व भारती प्रकाशन नागपुर, 2007, पृ. 4.
12. पूर्वोक्त, पृ. 9.
13. पूर्वोक्त, पृ. 16.
14. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला, बस्तर आरण्यक, पूर्वोक्त, पृ. 45.
15. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 20–21.
16. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 14.
17. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 33
18. यदु, हेमु, छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास, बी.आर. पब्लिसिंग, दिल्ली, 2006 पृ. 32.
19. पूर्वोक्त, पृ. वहीं.
20. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 50.
21. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 16.
22. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 56.
23. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 16–17.
24. यदु, हेमू, पूर्वोक्त, पृ. 32.
25. शुक्ल, हीरालाल, प्राचीन बस्तर, पूर्वोक्त, पृ. 57.
26. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला, बस्तर आरण्यक, पूर्वोक्त, पृ. 9.
27. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 17.
28. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 61.
29. पूर्वोक्त, पृ. 62.
30. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी, पूर्वोक्त, पृ. वहीं.
31. पूर्वोक्त, पृ. 18.
32. पूर्वोक्त, पृ. वहीं.
33. वर्मा, भगवान सिंह, छत्तीसगढ़ का इतिहास, म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2003, पृ. 28.
34. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 68.

35. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 19.
36. वर्मा, कामता प्रसाद, बस्तर की स्थापत्य कला (5वीं–12वीं शताब्दी), शताक्षी प्रकाशन रायपुर, 2008, पृ. 18.
37. वर्मा, भगवान सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 88.
38. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 70.
39. वर्मा, कामता प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 18
40. शुक्ल, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 71.
41. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, व्ही.डी., पूर्वोक्त, पृ. 19.
42. वर्मा, भगवान सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 28.
43. गुप्त,प्यारे लाल, प्राचीन छत्तीसगढ़, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, 1973, पृ. 228.
44. बेहार, रामकुमार एवं निर्मला, पूर्वोक्त, पृ. 9.
45. झा,रोहणी कुमार, क्रांतिदूत–प्रवीरचंद्र भंजदेव, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2007, पृ. 18.